# ज़ख़्म

मोहन राकेश

हिन्दी ADDA

# ज़ख़्म

https://www.hindiadda.com/jakhm/

हाथ पर ख़ून का लोंदा...सूखे और चिपके हुए गुलाब की तरह। फुटपाथ पर औंधे पीपे से गिरा गाढ़ा कोलतार...सर्दी से ठिठुरा और सहमा हुआ। एक-दूसरे से चिपके पुराने काग़ज़...भीगकर सडक़ पर बिखरे हुए। खोदी हुई नाली का मलबा...झडक़र नाली में गिरता हुआ। बिजली के तारों से ढका आकाश...रात के रंग में रँगता हुआ। चिकने माथे पर गाढ़ी काली भौंहें...उँगली और अँगूठे से सहलाई जा रहीं।

आवाज़ों का समन्दर...जिसमें कभी-कभी तूफ़ान-सा उठ आता। एक मिला-जुला शोर फुटपाथ की रेलिंग से, स्टालों की रोशनियों से, इससे, उससे और जिस किसी से आ टकराता। कुछ देर की कसमसाहट...और फिर बैठते शोर का हल्का फेन जो कि मुँह के स्वाद में घुल-मिल जाता...या सिगरेट के कश के साथ बाहर उड़ा दिया जाता।

सोचते होंठों को सोचने से रोकती सिगरेट थामे उँगलियाँ। क्रासिंग पर एक छोटे क़दों का रेला...ऊँचे क़दों को धकेलता हुआ। एक ऊँचे क़दों का रेला...छोटे क़दों को रगेदता हुआ। उस तरफ़ छोटे और ऊँचे क़दों का एक मिला-जुला कहकहा। बालकनी पर छटके जाते बाल। एक दरम्याना क़द की सीटी। सडक़ पर पहियों से उड़ते छींटे।

एक-एक साँस खींचने और छोडऩे के साथ उसकी नाक के बाल हिल जाते थे। वह हर बार जैसे अन्दर जाती हवा को सूँघता था। उसका आना-जाना महसूस करता था।

उसके कॉलर का बटन टूटा हुआ था। शेव की दाढ़ी का हरा रंग गर्दन की गोराई से अलग नज़र आता था। जहाँ से हड्डी शुरू होती थी, वहाँ एक गड्ïढा पड़ जाता था जो थूक निगलने या जबड़े के कसने से गहरा हो जाता था। कभी,जब उसकी ख़ामोशी ज़्यादा गाढ़ी होती, वह गड्ïढा लगातार काँपता। कॉलर के नीचे के दो बटन हमेशा की तरह खुले थे। अन्दर बनियान नहीं थी, इसलिए घने बालों से ढकी खाल दूर तक नज़र आती थी। इतनी लाल कि जैसे किसी बिच्छू ने वहाँ काटा हो। छाती के कुछ बाल स्याह थे, कुछ सुनहरे। पर जो बटनों को लाँघकर बाहर नज़र आ रहे थे,वे ज़्यादातर सफ़ेद थे।

सडक़ के उस तरफ़ पत्थर के खम्भों से डोलचों की तरह लटकते कुमकुमे एक-सी रोशनी नहीं दे रहे थे। रोशनी उनके अन्दर से लहरों में उतरती जान पड़ती थी जो कभी हल्की, कभी गहरी हो जाती थी। रोशनी के साथ-साथ कारिडोर की दीवारों, आदमियों और पार्क की गयी गाडिय़ों के रंग हल्के-गहरे होने लगते थे। बिजली के तारों से ऊपर, आसमान से सटकर, अँधेरा हल्की धूल की तरह इधर से उधर मँडरा रहा था। कुछ

अँधेरा पास के कोने में बच्चे की तरह दुबका था। ठंडी हवा पतलून के पायंचों से ऊपर को सरसरा रही थी।

"तो?" मैंने दूसरी या तीसरी बार उसकी आँखों में देखते हुए कहा। लगा जैसे वह मेरी नहीं, किसी घूमती हुई गरारी की आवाज़ हो जो हर दो मिनट के बाद 'तो' के झटके पर आकर लौट जाती हो।

उसका सिर ज़रा-सा हिला। घने घुँघराले बालों में कुछ सफ़ेद लकीरें रोशन होकर बुझ गयीं। चकोतरे की फाँकों जैसे भरे हुए लाल होंठ पल-भर के लिए एक-दूसरे से अलग हुए और फिर आपस में मिल गये। माथे पर उसके चिलगोज़े जितनी एक शिकन पड़ गयी थी।

"तुम और भी कुछ कहना चाहते थे न!" मैंने गरारी का फीता तोड़ा। उसने रेलिंग पर रखी बाँह पर पहले से ज़्यादा भार डाल लिया। कहा कुछ नहीं। सिर्फ़ सिर हिलाकर मना कर दिया।

कई-कई दोमुँहाँ रोशनियाँ आगे-पीछे दौड़ती पास से निकल रही थीं। रोशनियों से बचने के लिए बहुत-से पाँव और साइकिलों के पहिये तिरछे होने लगते थे। रेलिंग में कई-कई ठंडे सूरज एक साथ चमक जाते थे।

मैं समझने की कोशिश कर रहा था। अभी-अभी कोई आध घंटा पहले घर से निकलकर बाल कटाने जा रहा था, तो पूसा रोड के फुटपाथ पर किसी ने दौड़ते हुए पीछे से आकर रोका था। कहा था कि उस तरफ टू-सीटर में कोई साहब बुला रहे हैं। दौडक़र आनेवाला टू-सीटर का ड्राइवर था। मैंने घूमकर देखा, तो टू-सीटर में पीछे से घुँघराले बालों के गुच्छे ही दिखाई दिये। ड्राइवर ने वहीं से सडक़ को पार कर लिया, पर मैंने कुछ दूर तक फुटपाथ पर वापस जाने के बाद पार किया। पार करते हुए रोज़ से ज़्यादा ख़तरे का एहसास हुआ क्योंकि तब तक मैं उसे देख नहीं पाया था। टू-सीटर के पास पहुँचने तक कई तरह की आशंकाएँ मन को घेरे रहीं।

मेरे पास पहुँच जाने पर भी वह पीछे टेक लगाये बैठा रहा। हुड के अन्दर देखने तक मुझे पता नहीं चला कि कौन है...घुँघराले बालों से हल्का-सा अन्दाज़ा हालाँकि मुझे हो रहा था। जब पता चल गया कि वही है, तो ख़तरे का एहसास मन से जाता रहा।

"मुझे लग रहा था कि तुम्हीं हो," मैंने कहा। पर मुस्कराया नहीं। सिर्फ़ कोने की तरफ़ को थोड़ा सरक गया।

"कहीं जा रहे थे तुम?" मैं पास बैठ गया, तो उसने पूछा।

"बाल कटाने," मैंने कहा, "इस वक़्त सैलून में ज़्यादा भीड़ नहीं होती।" वह सुनकर ख़ामोश रहा, तो मैंने कहा, "बाल मैं फिर किसी दिन कटा सकता हूँ। इस वक़्त तुम जहाँ कहो, वहाँ चलते हैं।"

"मैं नहीं, तुम जहाँ कहो...," उसने जिस तरह कहा, उससे मुझे कुछ अजीब-सा लगा...हालाँकि बात वह अक्सर इसी तरह करता था। उसका पिये होना भी उस वक़्त मुझे ख़ास तौर से महसूस हुआ, हालाँकि ऐसा बहुत कम होता था कि वह पिये हुए न हो। उसके होंठ खुले थे और एक बाँह टू-सीटर की खिड़की पर रखकर वह इस तरह कोने की तरफ़ फैल गया था कि डर लगता था, झटके से नीचे न जा गिरे।

"घर चलें?" मैंने कहा। वह पल-भर सीधी नज़र से मुझे देखता रहा। फिर जवाब देने की जगह होंठ गोल करके ज़बान ऊपर को उठाये हुए हँस दिया।

"कुछ देर बाहर ही कहीं बैठना चाहो, तो कनाट प्लेस चले चलते हैं।"

जवाब उसने फिर भी नहीं दिया। सिर्फ़ ड्राइवर को इशारा किया कि टू-सीटर को पीछे की तरफ़ मोड़ ले।

सडक़ के गड्ढों पर से हिचकोले खाता टू-सीटर नाले से आगे बढ़ आया, तो एक बार वह मुश्किल से गिरते-गिरते सँभला। मैंने अपनी बाँह उसके कन्धे पर रखते हुए कहा, "आज तुमने फिर बहुत पी है।"

"नहीं," उसने मेरी बाँह हटा दी, "पी है पर बहुत नहीं। सिर्फ़...मैं बहुत ख़ुश हूँ।"

मैं थोड़ा सतर्क हो गया। वह जब भी पीकर धुत हो जाता था, तभी कहता था, "मैं बहुत ख़ुश हूँ।"

मैंने हँसने की कोशिश की...बहुत कुछ मन को घेरती आशंका और उससे पैदा हुई अस्थिरता की वजह से। उसका हाथ भी उसी वजह से अपने हाथों में ले लिया और कहा, "मुझे पता है तुम जब बहुत ख़ुश होते हो, तो उसका क्या मतलब होता है।"

उसका सिर टू-सीटर के कोने से सटा हुआ था। उसने वहीं से उसे हिलाया और कहा, "तुम समझते हो कि तुम्हें पता है...तुम हर चीज़ के बारे में यही समझते हो कि तुम्हें पता है।"

"मुझे अब भी लग रहा था कि वह झटके से बाहर न जा गिरे, पर अब उसके कन्धे पर मैंने बाँह नहीं रखी। अपने हाथों में लिये हुए उसके हाथ को थोड़ा और कस लिया...।"

आती-जाती बसों, कारों और साइकिलों के बीच रास्ता बनाता टू-सीटर लगभग सीधा चल रहा था। खडख़ड़ाहट के साथ गुर्र-गुर्र की आवाज़ ऊँची उठकर धीमी पडऩे लगती थी। बीच में किसी खुमचे या घोड़ागाड़ी के सामने पड़ जाने से ब्रेक लगता और हम सीट से ऊपर को उछल जाते। आर्यसमाज रोड के बड़े दायरे पर एक बस के झपाटे से बचकर टू-सीटर फुदकता हुआ गोल घूमने लगा। घूमकर लिंक रोड पर आने तक मैं बायीं तरफ़ के पोस्टर पढ़ता रहा...जिससे मन इर्द-गिर्द के बड़े ट्रैफिक की दहशत से चबा रहे।

पर वह उस बीच एकटक ट्रैफिक की तरफ़ देखता रहा। लिंक रोड पर आ जाने पर उसने अपना हाथ मेरे हाथों से छुड़ा लिया।

"मैं आज तुमसे एक बात करने आया था," उसने कहा। आँखें उसकी अब सडक़ को बीच से काटती पटरी को देख रही थीं...और उससे आगे पेट्रोल पम्प के अहाते को।

मैं क्षण-भर उसे और अपने को जैसे पेट्रोल पम्प के अहाते में खड़ा होकर देखता रहा...टू-सीटर के साथ-साथ बैठे और हिचकोले खाते हुए। लगा जैसे हम लोगों के उस वक़्त उस तरह वहाँ से गुज़रकर जाने में कुछ अलग-सी बात हो जिसे बाहर खड़े होकर पेट्रोल पम्प की दूरी से ही देखा और समझा जा सकता हो।

"तुम बात अभी करना चाहोगे या पहले कहीं चलकर बैठ जाएँ?" मैंने पूछा। दूसरी जगह का ज़िक्र इसलिए किया कि अच्छा है बात कुछ देर और टली रहे।

"तुम जब जहाँ चाहे," उसने दोनों हाथ घुटनों पर रख लिये और कोने से थोड़ा आगे को झुक गया। "बात सिर्फ़ इतनी है कि आज से मैं और तुम...मैं और तुम आज से...दोस्त नहीं हैं।"

इतनी देर में मन में जो तनाव महसूस हो रहा था वह सहसा कम हो गया...शायद इसलिए कि वह बात मुझे सुनने में ज़्यादा गम्भीर नहीं जान पड़ी। कुछ वैसी ही बात थी जैसी बचपन में कई बार कई दूसरों के मुँह से सुनी थी। यह भी लगा था कि शायद वह नशे की बहक में ही ऐसा कह रहा है। मैं पहले से ज़्यादा खुलकर बैठ गया। अपना हाथ मैंने टू-सीटर की खिड़की पर फैल जाने दिया।

पंचकुइयाँ रोड पर टू-सीटर को कहीं भी रुकना नहीं पड़ा। सडक़ उसे साफ़ मिलती रही। बत्तियाँ भी दोनों जगह हरी मिलीं। मैंने अपना ध्यान दुकानों के बाहर रखे फ़र्नीचर की आड़ी-तिरछी बाँहों और लैम्प शेड्ïस के गोल और लम्बूतरे चेहरों में उलझाए रखा। ऊपर से ज़ाहिर नहीं होने दिया कि मैंने उसकी बात को ज़्यादा गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया। एकाध बार बल्कि इस तरह उसकी तरफ़ देख लिया जैसे मुझे आगे की बात सुनने की उत्सुकता हो...और उत्सुकता ही नहीं, साथ गिला भी हो कि उसने ऐसी बात क्यों कही।

पंचकुइयाँ रोड पार करके अन्दर के दायरे में आते ही उसने ड्राइवर से रुक जाने को कहा। फिर मुझसे बोला, "आओ,यहीं उतर जाएँ।" मैं जेब से पैसे निकालने लगा, तो उसने मेरा हाथ रोक दिया और अपना बटुआ निकाल लिया।

कुछ देर हम लोग ख़ामोश चलते रहे। मैं अपने पैरों को और सामने की पटरी को देखता रहा। लगा कि पैरों के नाख़ून बहुत बढ़ गये हैं...कि इतनी ठंड में मुझे सिर्फ़ चप्पल पहनकर घर से नहीं निकलना चाहिए था। कुछ गीली मिट्टी चप्पलों में घुसकर पैरों से चिपक गयी थी। पैर ठंड के बाव$जूद पसीने से तर थे...हमेशा की तरह। मैंने सोचा कि इन दिनों मोज़ा तो कम से कम मुझे पहनना ही चाहिए।

चलते-चलते एक क्रॉसिंग के पास आकर वह रेलिंग के सहारे रुक गया। तब मैंने पहली बार देखा कि उसकी पतलून और बुश्शर्ट पर लहू के दाग़ हैं। दायीं हथेली पर छिगुनी के नीचे डेढ़ इंच का जख़्म मुझे कुछ बाद में दिखाई दिया।

"तुम्हारी बुश्शर्ट पर ये दाग़ कैसे हैं?" मैंने पूछा।

उसने भी एक नज़र उन दा$गों पर डाली-ऐसे जैसे उन्हें पहली बार देख रहा हो। "कैसे हैं?" उसने ऐसे कहा जैसे मैंने उस पर कोई इल्ज़ाम लगाया हो। "हाथ कट गया था, उसी के दाग होंगे।"

"हाथ कैसे कट गया?"

उसका चेहरा कस गया। "कैसे कट गया?" वह बोला, "कैसे भी कटा हो, तुम्हें इससे क्या है?"

कुछ देर ख़ामोश रहकर हम इधर-उधर देखते रहे...बीच-बीच में एक-दूसरे की तरफ़ भी। नियॅन साइन्स की जलती-बुझती रोशनियाँ गीली सडक़ में दूर अन्दर तक चमक जाती थीं। पहियों की कई-कई फिरकियाँ उसके ऊपर से फिसलती हुई निकल जाती

थीं। जब वह मेरी तरफ़ न देख रहा होता, तो सडक़ पर फिसलती रोशनियाँ उसकी आँखों में भी बनती-टूटती नज़र आतीं।

मैं मन ही मन कल के ताने-बाने को आज से जोड़ रहा था। कल वह सिन्धिया हाउस के चौराहे पर मेरे साथ खड़ा हँस रहा था। दस आदमियों के घेरे में से खुद ही मुझे उठाकर ले आया था। फुटपाथ पर चलते हुए ज़िद के साथ उसने मेरा सिगरेट सुलगाया था। फिर मुझे अपने कमरे में चलने और चलकर बियर पीने को कहा था। मेरे कहने पर कि उस वक़्त मैं नहीं चल सकूँगा, उसने बुरा भी नहीं माना था। मुझे छोडऩे बस-स्टॉप तक आया था। क्यू में मेरे साथ खड़ा रहा था। बस की भीड़ में मेरे फुटबोर्ड पर पाँव उठा लेने पर उसने दूर से हाथ हिलाया था। मैं जवाब में हाथ नहीं हिला सका क्योंकि मेरे दोनों हाथ भीड़ के कब्ज़े में थे। बस चल दी, तब वह स्टाप से थोड़ा हटकर अँधेरे में खड़ा मेरी तरफ़ देखता रहा था। मुझसे आँख मिलने पर हल्के से मुस्करा दिया था।

कल हम घंटा-भर साथ थे, पर उस दौरान हमारे बीच कोई ख़ास बात नहीं हुई थी। उसने कहा था कि अब जल्दी ही कोई अच्छी-सी लडक़ी देखकर वह शादी कर लेना चाहता है...अकेलेपन की ज़िन्दगी उससे और बर्दाश्त नहीं होती। पर यह बात उसने पिछले ह$फ्ते भी कही थी, महीना-भर पहले भी कही थी, और चार साल पहले भी। मैंने हमेशा की तरह सरसरी तौर पर हामी भर दी थी। हमेशा की तरह यह भी कहा था कि पहले ठीक से सोच ले कि कहाँ तक वह उस ज़िन्दगी को निभा सकेगा। कहीं ऐसा न हो कि बाद में आज से ज़्यादा छटपटाहट महसूस करे। सिन्धिया हाउस के चौराहे पर इसी बात पर वह हँसा था। "मुझे मालूम था," उसने कहा था, "कि तुम मुझसे यही कहोगे। यह बात तुम आज पहली बार नहीं कह रहे।" मुझे इससे थोड़ी शरम आयी थी, क्योंकि सचमुच मैं उससे यह बात कई बार कह चुका था...शिमला में डेविकोज़ की पिछली खिड़की के पास बैठकर बियर पीते हुए...जमशेदपुर में उसके होटल के कमरे में बिस्तर में लेटे हुए...इलाहाबाद में गज़दर के लॉन में चहलक़दमी करते हुए...और बम्बई में कफ परेड पर समन्दर में जाती गन्दी नाली की उस सँकरी डंडी पर चलते हुए, जहाँ नाजायज़ शराब पीना और नाजायज़ प्रेम करना दोनों ही नाजायज़ नहीं हैं। इनके अलावा और भी कई जगह यह बात मैंने उससे कही होगी क्योंकि नौ साल की दोस्ती में ज़्यादातर हमारी बात स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों को लेकर ही होती रही थी।

"कल रात तक तो हमारे बीच ऐसी कोई बात नहीं थी," मैंने कहा, "उसके बाद इस बीच ऐसा क्या हो गया जिससे...?"

वह हँसा। "क्या हो सकता था उसके बाद?...उसके बाद मैं अपने कमरे में चला गया और जाकर सो गया।" रेलिंग पर रखी उसकी बाँह शरीर के बोझ से एक बार फिसल गयी। वह जिस तरह रेलिंग से सटकर खड़ा था उससे लग रहा था कि अब आगे चलने का उसका इरादा नहीं है।

"आज दिन-भर कहाँ रहे?"

"वहीं अपने कमरे में। इसके बाद अगर पूछोगे कि क्या करता रहा, तो जवाब है कि टहलता रहा, किताब पढ़ता रहा,शराब पीता रहा।"

उसका ज़ख़्मी हाथ अब मेरे सामने था। नियॅन साइन्स के बदलते रंगों में लहू का रंग हरा-नीला होकर गहरा-भूरा हो जाता था।

किसी-किसी क्षण मुझे लगता कि शायद वह मज़ाक कर रहा है, कि अभी वह ठहाका लगाकर हँसा और बात वहीं समाप्त हो जाएगी। मगर उसकी आँखों में मज़ाक की कोई छाया नहीं थी। जिस हाथ पर जख़्म नहीं था उससे वह लगातार अपनी भौंहों को सहला रहा था। इस तरह भौंहों को वह तभी सहलाता था जब 'बहुत ख़ुश' होता था।

इस तरह 'बहुत ख़ुश' उसे मैंने कितनी ही बार देखा था। एक बार शिमला में, जब कम्बरमियर पोस्ट ऑफ़िस के बाहर उसने अपने एक साथी को पीट दिया था। वह आदमी इसके दफ़्तर का स्टेनो था...और इसका पीने और उधार लेने का साथी था। उस घटना के बाद दोनों की डिपार्टमेंटल इन्क्वायरी हुई और उन्हें शिमला से ट्रान्सफर कर दिया गया। फिर इलाहाबाद के एक बार में, जब किसी ने पास आकर अपने गिलास की शराब इसके मुँह पर उछाल दी थी। यह उसके बाद रात-भर अपनी चारपाई के गिर्द चक्कर काटता रहा और कहता रहा कि उस आदमी की जान लिये बग़ैर अब यह नहीं सो सकेगा। बम्बई के दिनों में तो यह अक्सर ही 'बहुत ख़ुश' रहता था। मैं उन दिनों चर्चगेट के एक गेस्टहाउस में रहता था। यह दिन में या रात में किसी भी वक़्त मेरे पास चला आता...दो में से एक बार अपनी भौंहों को सहलाता हुआ। कभी झगड़ा उस घर के लोगों से हुआ होता जिनके यहाँ यह पेइंग गेस्ट था...कभी कोलाबा के बूट-लेगर्ज़ से जो नौ बजने के साथ ही अपने दरवाज़े बन्द कर लेना चाहते थे। एकाध बार जब इसे लगा कि उस तरह पीकर आने पर मैं भी इससे कतराता हूँ, तो यह मेरे पास न आकर रात-भर कफ परेड के खुले पेवमेंट पर सोया रहा।

वह जिस ढंग से जीता था, उससे कई बार ख़तरा महसूस करते हुए भी मुझे उसके व्यक्तित्व में एक आकर्षण लगता था। वह बिना लाग-लिहाज़ के किसी के भी मुँह पर

सच बात कह सकता था...दस आदमियों के बीच अलफ-नंगा होकर नहा सकता था...अपनी जेब का आख़िरी पैसा तक किसी को भी दे सकता था। पर दूसरी तरफ यह भी था कि किसी लडक़ी या स्त्री के साथ दस दिन के प्रेम में जान देने और लेने की स्थिति तक पहुँचकर चार दिन बाद वह उससे बिल्कुल उदासीन हो सकता था। अक्सर कहा करता था कि किसी ऐसी स्त्री के साथ ही उसकी पट सकती है जो एक माँ की तरह उसकी देखभाल कर सके। यह शायद इसलिए कि बचपन में माँ का प्यार उसके बड़े भाई को उससे ज़्यादा मिला था। इसी वजह से शायद ज़्यादातर उसका प्रेम विवाहित स्त्रियों से ही होता था...पर उसमें उसे यह बात सालती थी कि वह स्त्री उसके सामने अपने पति से बात भी क्यों करती है...बच्चों के पास न होने पर भी उसका ज़िक्र ज़बान पर क्यों लाती है! "मुझे यह बर्दाश्त नहीं" वह कहता, "कि मेरी मौजूदगी में वह मेरे सिवा किसी और के बारे में सोचे, या मुझसे उसका ज़िक्र करे।"

नौ साल में मैं उसे उतना जान गया था जितना कि कोई भी किसी को जान सकता है। उसकी ज़िन्दगी जितनी दुर्घटनापूर्ण होती गई थी, उतना ही मेरा उससे लगाव बढ़ता गया था। यह लगाव उसकी दुर्घटनाओं के कारण शायद उतना नहीं था जितना अपनी दुर्घटनाओं को बचाकर चलने के कारण। मेरी जानकारी में वह अकेला आदमी था जो दायें-बायें का ख़्याल न करके सडक़ के बीचोंबीच चलने का साहस रखता था। सिर्फ़ हठ या ज़िद की वज़ह से ऐसा नहीं करता था...उसका स्वभाव ही यह था। कई बार जब गहरी चोट खा जाता, तो यह भी कोशिश करता कि अपने इस स्वभाव को बदल सके। तब वह बड़े-बड़े मनसूबे बाँधता, योजनाएँ बनाता और अपने इरादों की घोषणा करता। कहता कि उसे समझ आ गया है कि ज़िन्दगी के बारे में उसका अब तक का नज़रिया कितना ग़लत था। कि अब से वह एक निश्चित लकीर पकडक़र चलने की कोशिश करेगा...कि अब अपने को ज़िन्दगी से और निर्वासित नहीं करेगा...कि अब जल्दी ही शादी करके सही ढंग से जीना शुरू करेगा। जब तक नौकरी लगी रहती और पीने को काफ़ी शराब मिल जाती, तब तक वह कहता, "नहीं, मैं तुम लोगों की तरह नहीं जी सकता...मैं अपने वक़्त का हिस्सा नहीं, उसका निगहबान हूँ। मैं जीता नहीं, देखता हूँ...क्योंकि जीना अपने में बहुत घटिया चीज़ है।

जीने के नाम पर तो पेड़-पौधे भी जीते हैं...पशु-पक्षी भी जीते हैं।" पर जब कभी लम्बी बेकारी के दौर से गुज़रना पड़ता, और कई-कई दिन शराब छूने को न मिलती, तो वह भूलभुलैया में खोए आदमी की तरह कहता, "मुझे समझ आ रहा है कि मैं बिल्कुल कट गया हूँ...हर चीज़ से बहुत दूर हो गया हूँ।" अभी चन्द महीने पहले नई नौकरी मिलने पर उसने कहा था, "मुझे ख़ुशी है, मैं अपनी दुनिया में लौट आया हूँ। इस बार बेकारी में

तो मुझे लग रहा था कि मैं तुमसे भी कट गया हूँ...अपने में बिलकुल अकेला पड़ गया हूँ। मुझे यह भी एहसास हो रहा था कि तुम सब लोगों ने मुझे बीता हुआ मान लिया है...बीता हुआ और गुमशुदा।" उसके बाद मैंने उसे लगातार कोशिश करते देखा था-अपने को वक़्त का निगहबान बनने से रोकने की। अब काम के वक़्त के बाद वह अपने को कमरे में बन्द करता था...इधर-उधर लोगों से मिलने चला जाता था। जिन लोगों के नाम से ही कभी भडक़ उठता था, उनके साथ बैठकर चाय-कॉफ़ी पी लेता था। उनके मज़ाक में शामिल होकर साथ मज़ाक करने की कोशिश भी करता था। इसी बीच दो-एक मैट्रिमोनियल विज्ञापनों के उत्तर में उसने पत्र भी लिखे थे...दो-एक लड़कियों को जाकर देख भी आया था। एक लडक़ी देखने में साधारण थी...दूसरी साधारण भी नहीं थी। वैसे दोनों लड़कियाँ नौकरी में थीं। "मैं किसी ऐसी ही लडक़ी से शादी करना चाहता हूँ," उसने कहा था, "जो अपना भार खुद सँभाल सकती हो। ताकि आगे कभी बेकारी आये, तो मुझे दुहरी तकलीफ़ में से न गुज़रना पड़े।"

पर दोनों में से किसी भी जगह वह बात तय नहीं कर पाया...बात सिरे पर पहुँचने से पहले ही किसी बहाने उसने उन्हें टाल दिया। अभी दस दिन हुए, एक चायघर में बैठे हुए अचानक ही वह लोगों के बीच से उठ खड़ा हुआ था।"मैं जाऊँगा," उसने कहा था, "मेरी तबीयत ठीक नहीं है। लग रहा है मेरा दिल 'सिंक' कर रहा है।" चेहरा उसका सचमुच ज़र्द हो रहा था। सर्दी के बावजूद माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं।

मैं तब उसके साथ उठकर बाहर चला आया था। बाहर फुटपाथ पर आकर वह खोई नज़र से इधर-उधर देखता रहा था। "किसी डॉक्टर के यहाँ चलें?" मैंने उससे पूछा, तो वह जैसे चौंक गया। बोला, "नहीं-नहीं, डॉक्टर को दिखाने की ज़रूरत नहीं। मैं अपने कमरे में जाकर लेट रहूँगा, तो सुबह तक ठीक हो जाऊँगा।" दूसरे-तीसरे दिन मैं उसके कमरे में उसे देखने गया, तो वह वहाँ नहीं था। ताले में किसी के नाम उसकी चिट लगी थी, "मैं रात को देर से आऊँगा। मेरा इन्तज़ार मत करना।" तीन दिन बाद मैं फिर गया, तो पता चला कि उसके मालिक-मकान ने एक रात अपनी बीवी को बुरी तरह पीट दिया था...उस औरत के रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुनकर यह मालिक-मकान को पीटने जा पहुँचा था। उसके बाद से बहुत कम अपने कमरे में नज़र आया था। यह अस्वाभाविक नहीं लगा क्योंकि एक बार जब दफ़्तर में उसके सामने की कुर्सी पर बैठनेवाले अधेड़ बैचलर की हार्ट-फेल से मौत हो गयी थी, तो यह कई दिन दफ़्तर नहीं गया था और कोशिश करता रहा था कि उसकी मेज़ उस कमरे से उठवाकर दूसरे कमरे में रखवा दी जाए।

पर कल मुलाक़ात होने पर वह मुझे हमेशा की तरह मिला था। न उसने अपने मालिक-मकान का ज़िक्र किया था, न ही अपनी सेहत की शिकायत की थी। बल्कि मैंने पूछा कि अब तबीयत कैसी है, तो उसने आँखें मूँदकर सिर हिला दिया था कि बिलकुल ठीक है...हालाँकि जिस तरह वह मुझे उठाकर लाया था, उससे मुझे लगा था कि वह कोई ख़ास बात करना चाहता है। क्या बात होगी...यह मैं बस में चढ़ने के बाद भी सोचता रहा था।

एक परिचित चेहरा सामने की भीड़ से हमारी तरफ़ आ रहा था। सफ़ेद बाल और नुकीली ठोड़ी। आँखें बचाने पर भी वह व्यक्ति मुस्कराता हुआ पास आ खड़ा हुआ। "क्या हो रहा है?" उसने बारी-बारी से दोनों को देखते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, ऐसे ही खड़े थे," मैंने कहा। इस पर वह हाथ मिलाकर चलने को हुआ, तो अचानक उसकी नज़र ज़ख़्मी हाथ पर पड़ गयी। "यह क्या हुआ है यहाँ?" उससे पूछ लिया।

"यह कुछ नहीं है," ज़ख़्मी हाथ रेलिंग से कटकर नीचे चला गया। "कल खिड़की खोलते हुए कट गया था...खिड़की के काँच से। बन्द खिड़की थी...खुल नहीं रही थी। उसी का जख़्म है...खिड़की के काँच का।"

"पर यह जख़्म कल का तो नहीं लगता," उस व्यक्ति ने अविश्वास के साथ हम दोनों की तरफ़ देख लिया।

"नहीं लगता? नहीं लगता, तो आज का होगा, इसी वक़्त का। यह ठीक है?"

उस व्यक्ति की आँखें पल-भर के लिए चौकन्नी-सी हो रहीं। फिर एक बार सन्देह की नज़र उस हाथ पर डालकर और कुछ हमदर्दी के साथ मेरी तरफ़ देखकर वह भीड़ में आगे बढ़ गया। उसके सफ़ेद बाल सलेटी-से होकर कुछ दूर तक नज़र आते रहे।

"तो?"

वह हिला नहीं। और भी गहरी नज़र से मेरी तरफ़ देखने लगा। जैसे आँखों से मेरी चीड़-फाड़ कर रहा हो।

"कुछ देर कहीं चलकर बैठें?" मैंने पूछा।

उसने सिर हिला दिया। "मैं अब जा रहा हूँ," उसने कहा।

"कहाँ जाओगे?

"अपने कमरे में...या जहाँ भी मन होगा।"

"पर मेरा ख़याल था कि तुम अभी कुछ और बात करना चाहोगे।"

"मैं और बात करना चाहूँगा?" वह हँसा, "मैं अब किसी से भी और बात करना चाहूँगा?"

"पर मैं तुमसे बात करना चाहूँगा," मैंने कहा, "तुम कहो, तो यहीं कहीं बैठते हैं। नहीं तो कुछ देर के लिए मेरे घर चल सकते हैं।

"तुम्हारे घर?" नियॅनलाइट्स के रंग उसकी आँखों में चमककर बुझ गये। "तुम्हारा घर कल से आज में कुछ और हो गया है?"

बात मेरी समझ में नहीं आयी। मैं चुपचाप उसकी तरफ़ देखता रहा। वह पहले से थोड़ा और मेरी तरफ़ को झुककर बोला, "तुम्हारा घर वही है न जहाँ तुम कल भी गये थे...अकेले? बस के फुटबोर्ड पर लटके हुए...? कल तुम्हें मेरे साथ रहने से...मुझे साथ ले जाने से-डर लगता था...आज नहीं लगता? मैं जैसा बेकार कल था वैसा ही आज भी हूँ...बिलकुल उतना ही बेकार और उतना ही बदचलन।"

ट्रैफिक की आवाज़ से हटकर एक और आवाज़-आसमान में बादल की हल्की गडग़ड़ाहट। मैंने ऊपर की तरफ़ देखा...जैसे कि देखने से ही पता चल सकता हो कि बारिश फिर तो नहीं होने लगेगी। बिजली के तारों के ऊपर धुँधला अँधेरा था और उससे भी ऊपर हल्की-हल्की सफ़ेदी। मुझे लगा कि मेरे पैर पहले से ज़्यादा चिपचिपा रहे हैं,और चप्पल के अन्दर गयी मिट्टी की परतें दोनों तलवों से चिपक गयी हैं। मेरे दोनों होंठ भी आपस में चिपक रहे थे। उन्हें कोशिश से अलग करके मैंने कहा, "तुमने कल नहीं बताया कि तुमने यह नौकरी भी छोड़ दी है।"

"तुम्हारा ख़याल है, मैं नौकरी छूटने की वज़ह से यह बात कर रहा हूँ?" वह अपनी आँखें अब और पास ले आया।"तुम समझते हो कि इसी वज़ह से कल मैं तुमसे चिपका रहना चाहता था?...पर ख़ातिर जमा रखो, नौकरी न रहने पर भी मैं दस आदमियों को खिला सकता हूँ...खाता मैं कभी किसी से नहीं। और यह भी विश्वास रखो कि मुझे अभी बीस साल और जीना है...कम से कम बीस साल।"

नीचे से चिपचिपाते पैर ऊपर से मुझे बहुत नंगे और ठंडे महसूस हो रहे थे। सामने रोशनी का एक दायरा था जिसमें कई-एक स्याह बिन्दु हिल-डुल रहे थे। उस दायरे में घिरा एक और दायरा था...तारीकी का...जिसमें कोई बिन्दु अलग नज़र नहीं आता था, पर जो पूरा का पूरा हल्के-हल्के काँप रहा था।

उसने पास से गुज़रते एक टू-सीटर को हाथ के इशारे से रोका, तो मैंने फिर कहा, "चलो, घर चलते हैं। वहीं चलकर बात करेंगे।"

"तुम जाओ अपने घर," उसने मेरा हाथ अपने ज़ख़्मी हाथ में लेकर हिला दिया। "...क्योंकि तुम्हारे लिए एक ही जगह है जहाँ तुम जा सकते हो। पर जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरे लिए एक ही जगह नहीं है...मैं कहीं भी जा सकता हूँ।" और रेलिंग के नीचे से निकलकर वह टू-सीटर में जा बैठा। टू-सीटर स्टार्ट होने लगा, तो उसने बाहर की तरफ़ झुककर कहा, "पर इतना तुम्हें बता दूँ, कि मुझे कम से कम बीस साल और जीना है। तुम्हारे या दूसरे लोगों के बारे में मैं नहीं कह सकता...पर अपने बारे में कह सकता हूँ कि मुझे ज़रूर जीना है।"

मेरे हाथ पर ठंडा-सा जज़ीरा बन गया था...वहाँ जहाँ वह उसके जख़्म से छुआ था। उसका टू-सीटर दायरे में घूमता हुआ काफ़ी आगे निकल गया, तो भी मैं कुछ देर रेलिंग के सहारे वहीं खड़ा हाथ के जज़ीरे को सहलाता रहा। दो-एक और ख़ाली टू-सीटर सामने से निकले, पर मैंने उन्हें रोका नहीं। जब अचानक एहसास हुआ कि मैं बेमतलब वहाँ खड़ा हूँ, तो वहाँ से हटकर कॉरिडोर में आ गया और शीशे के शो-केसों में रखे सामान को देखता हुआ चलने लगा। कुछ देर बाद मैंने पाया कि कनाट प्लेस पीछे छोडक़र मैं पार्लियामेंट स्ट्रीट के फुटपाथ पर चल रहा हूँ...उस स्टॉप से कहीं आगे जहाँ से कि रोज़ घर के लिए बस पकड़ा करता था।